श्रीमद्भगवद्गीता के संदर्भ में मानसिक प्रबन्धन

अखिलेश कुमार विश्वकर्मा [1] पी एच. डी. शोधार्थी (योग)

Email Id- akhilhariom123@gmail.com

साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,

अकादमिक परिशद्– बारला, रायसेन 464551 (म.प्र.)

सार संक्षेपिका

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।। श्रीमद्भगवद्गीता 6/26

वर्तमान में मनुष्य ने सुख और शान्ति की खोज में शरीर, समय, श्रम और धन का अपरिमित दोहन किया है। प्रत्युत शान्ति तो नही पर संसाधनों का अपार संग्रह हो गया है। जीवन में शान्ति और सृजन का लक्ष्य विस्मृत हो गया है और जीवन का उद्दे"य अब शान्ति नही संसाधनों का संग्रह बन गया है। संसाधन संग्रह के क्रम में मनुष्य ने अपनी आत्मा सहित जीवन के सम्पूर्ण आयामों का हनन किया है। जीवन अव्यवस्थित, असंतुलित एवं अनियोजित हो गया है। मनुष्य आज पुनः सुख, शान्ति और आनन्द की खोज में बेचेन हुआ भटक रहा है। जिसके समाधान हेतु भांति–भांति के प्रयास भी कर रहा है। परन्तु जीवन प्रबंधन के इस क्रम में मानसिक प्रबन्धन अधिक उपयोगी एवं वर्तमान में प्रासांगिक दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि जीवन प्रबन्धन के अनेक आयामों में मनुष्य प्रयासरत है परन्तु बिना मानसिक प्रबन्धन के अन्य सारे प्रबन्धन का प्रभाव अत्यल्प है। यदि मन की लगाम मनुष्य के हाथ में है तो सम्पूर्ण जीवन का प्रबन्धन आसान है। श्रीमद्भगवद्गीता हालांकि सम्पूर्ण जीवन प्रबन्धन का शास्त्र है तथापि वर्तमान आव"यकता के अनुसार मानसिक प्रबन्धन देखना आव"यक है। भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में विषयों के संपर्क में मन की चंचलता, असंयमित स्थिति एवं वासनाओं में संलग्न जैसे स्वरूप को बता कर मन को एकाग्र, संयमित बनाने के मार्ग सुझाते हैं। जिस से मनुष्य को आत्मस्थ, योगी, स्थितप्रज्ञ होने का संदे"ा देते हैं। मन को विषयों में भटकाने वाले मार्ग से आत्मस्वरूप की दि"ाा देने की प्रक्रिया ही मानसिक प्रबन्धन है।

कूट शब्दः मानसिक प्रबन्धन, आत्मस्थ, योगी, स्थितप्रज्ञ।

प्रस्तावना

मनुष्य में शक्ति, सामर्थ, योग्यता एवं संसाधनों का उपयोग प्रबन्धन की कु"ालता से ही होता है। प्रबन्धन वर्तमान की अवा"यकता और भविष्य की निधि है। वर्तमान जीवन भौतिकता के चलते अपनी पूरी ऊर्जा प्रतिस्पर्धा में दौर में लगाए हुए है। मनुष्य मानसिक रूप से विक्षिप्त हो रहे हैं। जीवन का मूल्य मात्र पूंजी के संग्रह में सीमित कर दिया है। दम्भ, कपट, अभिमान, कठोरता, अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, घ्रणा, अहंकार आदि की कलुषताओं ने मन को अपना आवास बना लिया है। अभय, ह्रदय की शुचिता, अहिंसा, सत्य, त्याग, शान्ति, क्षमा, विवेक, संयम, श्रद्धा आदि दैवी सम्पदाओं का अभाव हो गया है। इन्हीं सब कलुषताओं से मनुष्य मन को उबारना और दैवीय पथ पर ले जाना ही मानसिक प्रबन्धन है। जिसका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

श्रीमद्भगवद्गीता प्रसिद्ध महाकाव्य है। जो कि महाभारत का एक अं"ा है। श्रीमद्भगवद्गीता के 18 अध्याय महाभारत के भीष्मपर्व के 23–40 तक के अध्याय में से लिये गये हैं। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन इस ग्रंथ को ईसा पूर्व 5 वी शताब्दी का ग्रंथ मानते हैं। हमारे मानव जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सार्वकालिक, सार्वजनीय उपयोगी ग्रंथ है। श्रीमद्भगवद्गीता **प्रस्थानत्रयी** का एक स्तंभ है। प्रस्थानत्रयी का प्रथम स्तंभ **'वैदिक–प्रस्थान'** है, जिसको **'उपनिशद्'** कहा जाता है। द्वितीय स्तम्भ **'दा"ार्निक–प्रस्थान'** है, जिसे **'ब्रह्मसूत्र'** कहते हैं। तृतीय स्तम्भ **'स्मार्त–प्रस्थान'** है, जिसे **'श्रीमद्भगवद्गीता'** कहा जाता है। यह ग्रंथ आत्मविद्या के गूढ़ एवं पवित्र तत्वों को अपने में समेकित किया हुआ है। यह ग्रंथ स्वर्धमानुसार कर्म को करने का मार्ग प्र"ास्त करता है साथ ही मानवीय मूल्यों एवं सिद्धांन्तों को आचरण में लाकर अपनी आध्यात्मिक पूर्णावस्था को प्राप्त करना सिखाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में निहित प्रबन्धन की प्रक्रिया जीवन से सम्बंधित समस्त समस्याओं का समाधान करना सिखाती है। जब व्यक्ति अज्ञान के बंधन से मुक्त रहकर लोभ, मोह, क्रोध, अहंकार को त्यागकर निष्काम कर्म के मार्ग पर चल कर आत्मोत्थान को प्राप्त करता है वहीं से उसके जीवन के प्रबन्धन की प्रक्रिया का शुभारम्भ हो जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में मन का स्वरूप

मन का स्वरूप संकल्प विकल्पात्मक है। यह मन का लक्षण है–**संकल्पविकल्पात्मकंमनः।** इसका मुख्य कार्य है– इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त विषयों का संग्रह करना। जब तक बुद्धि इस बात का निर्णय न करे कि कौन सा विषय उचित है और कौन सा विषय अनुचित तब तक मन सन्देह की स्थिति में रहता है। संग्रहकर्त्ता को जब तक इस विषय का ज्ञान न हो कि कौन–सा विषय ग्रहण करना है और कौन–सा नहीं तब तक सभी प्रकार के उचित और अनुचित विषय को अपने अन्दर स्थान देना मन की मजबूरी या स्वाभाविकता बन जाती है। एकाद"ा इन्द्रियों का समुच्य मानव का देह है, जिनको दो भागों में बाँटा गया है–कर्मेन्द्रियाँ हाथ, पैर, मुंह, पायु और उपस्थ। ज्ञानेन्द्रियाँ–आँख, नाक, कान, जिव्हा एवं त्वचा। कर्मेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ का संचालन एक और इन्द्रिय करती है। जिसको उभय इन्द्रिय कहा जाता है वह है–मन। मन से ही सभी अन्य इन्द्रियाँ संचालित होती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार 'मन छटवी इन्दिय है।[1] शास्त्रों में मन को उभय रूप इन्द्रिय माना है अर्थात् यह ज्ञानेन्द्रिय भी है और कर्मेन्द्रिय भी। क्योंकि चक्षुरादि इन्द्रियों की तथा वाक् आदि कर्मेन्द्रियों की अपने–अपने ग्राह्य विषयों में प्रवृत्ति मन से सम्बद्ध (संयोग) होने पर ही होती है।' भगवान श्रीकृष्ण भौतिक शरीर की अपेक्षा इन्द्रियों को अधिक सूक्ष्म और श्रेष्ठ मानते हैं। मन को इन्द्रियों से श्रेष्ठ बताते हैं क्योकि मन की सहायता के बिना इन्द्रियाँ अपना कार्य नही ंकर सकती। विवेक शक्ति की प्रधानता के कारण मन से अधिक श्रेष्ठ बुद्धि को माना है। सभी को प्रका"ात करने वाली और साक्षी भाव में स्थापित होने के कारण आत्मा को सभी में श्रेष्ठ और परे माना है।[2] मन के स्वरूप के बारे में अर्जुन श्रीकृष्ण से कहता है मन न केवल चंचल हे अपितु उच्छृंखल, बलवान् और हठी भी है। मन से ही इन्द्रियाँ और शरीर संचालित होता है। यदि मन हिंसात्मक प्रवृत्ति वाला है तो इन्द्रियों और शरीर में भी हिंसा के लक्षण उत्पन्न होंगे। मन के नियंत्रण की कठिनाई को अभिव्यक्त करते हुए अर्जुन मन को वायु की भाँति दुष्कर कार्य मानते है।[3]

---

[1] ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। श्रीमद्भगवद्गीता– 15/7

[2] इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।। श्रीमद्भगवद्गीता– 3/42

[3] चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। श्रीमद्भगवद्गीता– 6/34

श्रीमद्भगवद्गीता में मानसिक प्रबन्धन

प्रबन्धन जीवन को व्यवस्थित, संयमित, संतुलित, सुनियोजित एवं कर्मों के साथ समायोजन की कला का नाम है। सम्पूर्ण जीवन का प्रबन्धन मानसिक प्रबन्धन पर निर्भर है। मन ही है जो इन्द्रियों को विषयों में संलग्न रखता है। इन्द्रियाँ जैसे विषयों से संलग्न होती है मनुष्य का व्यवहार एवं संस्कार भी वैसा ही बन जाता है। अमृतबिन्दूपनिषद् के अनुसार– 'मन से अविद्या का आवरण हटते ही मन मुक्ति या मोक्ष का हेतु बन जाता है।'[4]

विवेक चूड़ामणि में आदि शंकराचार्य का मन के संबन्ध में कथन है– 'मन से अतिरिक्त अविद्या और कुछ नहीं है, मन ही भव बन्धन की हेतुभूता अविद्या है। उसके नष्ट होने पर सब नष्ट हो जाता है और उसी के जागृत होने पर सब कुछ प्रतीत होने लगता है।[5]

अर्जुन ने मन के चंचल स्वाभाव को श्रीकृष्ण के समक्ष प्रस्तुत किया। चंचलता के परिणाम को अर्जुन भलि–भांति जानता था और इसीलिए मन के इस चंचल स्वाभाव से मुक्त होना चाहता था। फलतः अर्जुन ने अपने को भगवान में समर्पित करते हुए मन को नियंत्रण में करने की कु"ालता को जानने की प्रार्थना की। मन को विषयों से मुक्त कर चंचल स्वाभाव को शान्त कर एकाग्र और संयमित करने की कला का नाम ही मानसिक प्रबन्धन है।

अर्जुन मन को नियंत्रित करनें में बाधा एवं असहजता को अभिव्यक्त करता है। श्रीकृष्ण जिसकी सहमति देते हुए मन को व"ा में करने का उपाय सुझाते हैं। उन उपायो में दो उपायो का समावे"ा किया यथा–अभ्यास और वैराग्य।[6]

श्रीकृष्ण अर्जुन को मानसिक नियंत्रित करने के लिए अभ्यास साधन पक्ष को समझाते हैं। अभ्यास कैसा करना है इसका उपाय बताते हैं जहाँ–जहाँ अर्थात् जिन–जिन विषयों से मन विचलित होता है, चंचल होता है उस–उस स्थान से संयम कर के मन को वापस लाना है। व"ा में करके आत्मा में स्थिर करना चाहिए।[7]

---

[4] मन एवमनुष्याणांकारणंबन्यमोक्षयोः। बन्याय विषयासक्तंमक्त्यै निर्विषयंमनः।। अमृतबिन्दूपनिषद् 2.

[5] न ह्यस्त्यविद्यामनसोतिरिक्तामनोह्यविद्याभवबन्धहेतुः।
तस्मिन्विनष्टेसकलंविनष्टंविजृम्भितेस्मिन्सकलंविजृम्भते।। विवेक चूड़ामणि– 171.

[6] असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। श्रीमद्भगवद्गीता– 6/35

[7] यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।। श्रीमद्भगवद्गीता– 6/26

अब प्र"न आता है कि मन को नियंत्रण में लाने के लिए अभ्यास और वैराग्य किसका और कैसे करें इस विषय पर भगवान श्रीकृष्ण अभ्यास की एक पूरी प्रक्रिया बताते हैं। यहाँ पर योग की प्रक्रिया का वर्णन किया है, पवित्र स्थान पर जो न अधिक ऊँचा हो न अधिक नीचा ऐसे स्थान का चयनकर वहाँ क्रम"ाः कु"ाा, मृग–चर्म और अन्त में वस्त्र बिछाना चाहिए।[8]

तत्प"चात् उस आसन पर बैठ कर मन को इन्द्रिय विषयों से हटाकर व"ा में करने का प्रयत्न करना चाहिए। चित्त और इन्द्रियों की प्रवृत्तियों को व"ा में करके आत्मा की शुद्धि करना चाहिए।[9] तत्प"चात् शरीर को स्थिर कर के मुद्राओं का वर्णन करते हैं।

स्थिरतापूर्वक अपने शरीर, सिर और ग्रीवा को अचल और सीधा रखकर अन्य दि"ाओं की ओर न देखकर नासिका के अग्रभागपर दृष्टि को एकाग्र करना चाहिए।[10]

तत्प"चात् भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं शान्त चित्त होकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर मन को संयम कर मेरे परायण होकर बैठे।[11] यौगिक प्रक्रियाओं का वर्णन कर भगवान श्रीकृष्ण ध्यान रखने वाली बातों के बारे में उपदे"ा देते हैं–

इस श्लोक में योग साधक के भोजन अर्थात् आहार, विहार, कर्मों की चेष्टा तथा सुषुप्ति और जाग्रति में सम रहने वाले के लिए योग दुःखों को नष्ट करने वाला होता है।[12]

आहार और मन का संबंध बहुत गहरा होता है। जैसा साधक का आहार होता है मन भी वैसा ही होता है। आहर का प्रभाव तीनों गुणों पर पड़ता है। तीनों गुणों का प्रभाव मनुष्य के मन पर पड़ता है। इस प्रकार जैसा आहार होता है वैसा ही मन होता है। राजसिक और तामसिक गुणप्रधान आहार न लेकर सात्विक गुण प्रधान आहार ग्रहण करना चाहिए।

---

[8] शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।। श्रीमद्भगवद्गीता– 6/11

[9] तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।। श्रीमद्भगवद्गीता– 6/12

[10] समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।। श्रीमद्भगवद्गीता– 6/13

[11] प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।। श्रीमद्भगवद्गीता– 6/14

[12] युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगोभवति दुःखहा।। श्रीमद्भगवद्गीता– 6/17

मन अन्य विचारों मे ंहमे"ाा संलग्न रहता है। मन को अपने केन्द्र अर्थात् आत्मा में स्थापित करने के लिए श्रीकृष्ण मन को धीरे–धीरे स्थिरतापूर्वक बुद्धि को नियंत्रित करके मन को प्र"ाान्त कर आत्मा में स्थिर करने का सुझाव देते हैं।[13]

बारबार प्रयत्न करने पर भी इन्द्रियों की चंचलता बुद्धि मान पुरूष के मन को बलपूर्वक अर्थात् हठात् हर लेती हैं।[14]

इसलिए भगवान श्रीकृष्ण मन को नियंत्रित करने के लिए इन्द्रियों को संयमित करने पर बल देते हैं। यदि इन्द्रियाँ संयमित होती हैं तो मन स्वतः से ही नियंत्रण में हो जाएगा। मन जब नियंत्रित होगा तो बुद्धि विवेक से युक्त होगी। फलतः मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही व्यवस्थित, संतुलित एवं प्रबन्धित रहेगा।

मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, आत्म संयम और मन की निर्मलता ये मानसिक तप कहलाता है। मन की शान्ति और संयम की स्थिति मन के उक्त नियमों के पालन में होता है।[15]

उक्त अभ्यासों से मन इन्द्रिय और इन्द्रिय विषयों के वि"ाभूत नहीं रहता। मन स्थिर, शांत और संयम में रहता है। मन की शान्ति भौतिक जगत में न होकर आत्मकेन्द्रित हो जाती है। यही वास्तविक एवं स्थाई शान्ति होती है। जिसका मन शान्त हो गया हो उसके लक्षणों के बारे में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं।

उस योगी को परमानन्द (उत्तम सुख) की प्राप्ति होती है जिसका मन प्र"ाान्त है, जिसका रजोगुण शान्त हो गया हो और जिसने समस्त पापों से मुक्त होकर ब्रह्मैक्य स्थापित कर लिया हो।[16]

---

[13] शनैःशनैरुपरमेद् बुद्धया धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।। श्रीमद्भगवद्गीता– 6/25

[14] यततो ह्यपिकौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसमं मनः।। श्रीमद्भगवद्गीता– 2/60

[15] मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।। श्रीमद्भगवद्गीता– 17/16

[16] प्र"ाान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।। श्रीमद्भगवद्गीता– 6/27

उपसंहार

मन जब अनियंत्रित, अ"ाान्त और रजो गुण आदि की प्रवृत्ति में चंचलस्वाभाव का होता है तब वह मन बंधन का कारण बनता है और बही मन जब नियंत्रित, शान्त एवं सात्विक गुण प्रधान होता है तो मुक्ति का कारण बन जाता है। मन की अनियंत्रित स्थिति विषय–वासनाओं के अधीन होती है और विषयों की ओर प्रवृत्त मन आत्म केन्द्रत नहीं होता है। आत्म केन्द्रित स्थिति ही परम आनन्द अर्थात् आत्मा के मूल स्वरूप सत्, चित् और आनन्द के निकट होती है। मनुष्य के श्रम के पीक्षे मूल भावना आत्म संतोष, सुख, शान्ति और आनन्द की होती है पर वह प्रयास भौतिक जगत और इन्द्रियों में खोजता हैं जबकि संतोष, सुख, शान्ति और आनन्द का मूल स्त्रोत आत्मा है। इस प्रकार मन की शान्त स्थिति आत्मा के निकट की स्थिति होती है। मन को आत्मा के निकट स्थापित करने की कला का नाम ही मानसिक प्रबन्धन है। मानसिक प्रबन्धन की कला वर्तमान समाज में अत्यंत उपयोगी एवं प्रासांगिक है। श्रीमद्भगवद्गीता क्योकि मन की शान्ति और संतोष की चाह प्रत्येक मनुष्य को है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्वामी रामसुखदास (2013) *श्रीमद्भगवत् गीता साधक संजीवनी,* गीताप्रेस गोरखपुर.
2. गोयन्दका हरिकृष्णदास (2011) *श्रीमद्भगवत् गीता शांकरभाष्य हिन्दी–अनुवादसहित,* गीताप्रेस गोरखपुर.
3. *श्रीमद्भगवत् गीता* (2011) गीताप्रेस गोरखपुर.
4. स्वाामी रंगनााथानन्द (2014) *श्रीमद्भगवद्गीता का सार्वजनीन सन्दे"ा,* प्रथम भाग, द्वितीय और तृतीय भाग, स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर
5. सरस्वती, स्वामी ि"ावानन्द (2016) *श्रीमद्भगवद्गीता,* द डिवाइन लाइफ सोसायटी, उत्तराखण्ड़ (हिमालय)
6. स्वामी अपूर्वानन्द, (2016) *श्रीमद्भगवद्गीता,* स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर
7. सरस्वती, स्वामी निरंजनानंद (2012) *गीता द"र्न,* योग पब्लिके"ान ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत.
8. परमहंस, स्वामी अड़गड़ानन्द (2018) *यथार्थ गीता,* श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट, मुम्बई
9. तीर्थ, श्रीस्वामी ओकारनन्द (2011), *पातंजलयोगप्रदीप,* गीताप्रेस गोरखपुर.
10. *विवेक चूड़ामणि,* गीताप्रेस गोरखपुर.